Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 5 | ISSN : 2582-0095

चैतन्य मत का दार्शनिक दृष्टिकोण

स्वाती द्विवेदी
शोधच्छात्रा,
संस्कृत विभाग,
नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय जमुनीपुर,
प्रयागराज।

शोध आलेख सार– भक्ति का उत्कृष्ट आदर्श श्री चैतन्य देव ने स्वयं अपने जीवन में प्रदर्शित किया। माध्वमत की शाखा होने पर भी चैतन्यमत का दार्शनिक दृष्टिकोण सर्वथा स्वतन्त्र तथा पृथक है। श्रीमद्भागवत निर्मल प्रमाणशास्त्र हैं। प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ पुरूषार्थ है– महाप्रभु चैतन्य के मत का यही सारांश है।

मुख्य शब्द– चैतन्य, भक्ति, प्रेम, दार्शनिक, वैष्णव, पुरूषार्थ।

चैतन्य महाप्रभु ने अपने भजन, कीर्तन तथा प्रेम विह्वल चरित्र से जिस वैष्णव धर्म की सरिता बंगाल में बहाई उसका नाम है– गौणीय वैष्णव धर्म या चैतन्य मत। यह मत प्रस्फुटित तो बंगाल में हुआ परन्तु इसका व्यापक प्रभाव पड़ा व्रजमण्डल पर। समग्र उत्तरी भारत को विशेषतः बंगाल को भक्ति से आप्लावित करने का श्रेय महाप्रभु चैतन्य को है। महाप्रभु भक्ति रस की जीवित– मूर्ति उदात्त मधुर भाव के जाज्वल्यमान प्रतीक थे।

भक्ति का उत्कृष्ट आदर्श श्री चैतन्य देव ने स्वयं अपने जीवन में प्रदर्शित किया। भगवान के नाम का संकीर्तन चैतन्य का अत्यन्त लोकप्रिय आध्यात्मिक साधन था जिसके द्वारा जन–साधारण को अपने भक्ति आन्दोलन के प्रति आकृष्ट करने में सर्वथा कृतकार्य हुए। श्रीकृष्ण नाम संकीर्तन वैष्णव सम्प्रदाय का प्राण है। यह प्रेममार्गीय सम्प्रदाय है। भगवान के प्रति भक्त का जो स्वाभाविक एवं अविच्छेद अनुराग है वही प्रेमा भक्ति कहलाती है।

माध्वमत की शाखा होने पर भी चैतन्यमत का दार्शनिक दृष्टिकोण सर्वथा स्वतन्त्र तथा पृथक है। माध्वमत की मूल दृष्टि द्वैतवाद की है जिससे भिन्न चैतन्य मत का नाम है– 'अचिन्त्यभेदाभेद'। भगवान श्रीकृष्ण ही परमतत्त्व हैं। उनकी अनन्त शक्तियाँ हैं। शक्ति और शक्तिमान में न तो परस्पर भेद ही सिद्ध होता है और न अभेद, इन दोनों का सम्बन्ध तर्क के द्वारा अचिन्त्य है। इसीलिए इस मत की प्रसिद्धि 'अचिन्त्यभेदाभेद' नाम से की जाती है। इस विषय में श्रीरूपगोस्वामी ने 'लघुभागवतामृतम्' में स्पष्ट ही लिखा है–

एकत्वं च पृथक्त्वं च तथांशत्वमुतांशिता।

तस्मिन्नेकन्न नायुक्तम् अचिन्त्यानन्तशक्तितः।।[1]

अचिन्त्य अनंत शक्तियों के कारण उस एक ही पुरूषोत्तम में एकत्त्व और पृथकत्त्व, अंशत्त्व तथा अंशित्त्व का रहना कथमपि अयुक्त नहीं रहता। श्रीजीव गोस्वामी के कथनानुसार[2] भगवान् श्रीकृष्ण में उनकी स्वरूप आदि शक्तियों से अभिन्न रूप से चिन्तन करना अशक्य होने से वह भिन्न प्रतीत होता है और उनसे भिन्न रूप से चिन्तन करना अशक्य होने के कारण वह अभिन्न प्रतीत होता है, अतः शक्ति और शक्तिमान् में भेद और अभेद दोनों सिद्ध होते हैं और ये दोनों ही अचिन्त्य शक्ति होने के कारण 'अचिन्त्य' माने जाते हैं। इस प्रकार अचिन्त्य शक्ति के कारण यह प्रपञ्च न तो भगवान् के साथ ही एकांततया भिन्न ही प्रतीत होता है और न अभिन्न ही। इसीलिए इस मत का दार्शनिक दृष्टिकोण 'अचिन्त्यभेदाभेद' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

चैतन्य मतानुसार महान् पुरूषार्थ है– प्रेम 'प्रेम पुमर्थो महान्'– भक्ति को सर्वश्रेष्ठ पुरूषार्थ मानना अपना महत्त्व रखता है। दार्शनिकों के द्वारा निर्णीत पुरूषार्थ चार हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। परन्तु यह मत भक्ति को 'पंचम पुरूषार्थ' के रूप में ग्रहण करता है। भक्ति, दोनों प्रकार की होती है– साधनरूपा और साध्यरूपा। भक्ति स्वतः साधन भी है और साध्य भी है। श्रीकृष्ण का भक्त मुक्ति को अपनी उपासना में अंतराय समझ कर उसकी प्राप्ति को अपने जीवन का लक्ष्य नहीं बनाता, उसका एकमात्र लक्ष्य होता है– श्रीकृष्ण की रागात्मिका भक्ति। इस मत के अनुसार– भक्ति है, श्रीकृष्ण का अनुकूलता से अनुशीलन या सेवन जिसमें अन्य अभिलाषाओं की कोई भी सत्ता नहीं रहती और जो ज्ञान, कर्म आदि से कथमपि आवृत्त नहीं रहता।[3]

श्रीमद्भागवत में स्पष्ट रूप से इसी भक्ति की श्रेष्ठता का वर्णन अनेक स्थलों पर किया गया है। भगवान से स्वयं ही अहेतुकी तथा अत्यवहिता भक्ति की प्रशंसा करते हुए कहा है–

दीपामानं न ग्रहन्ति विना मत्सेवनं जनाः।।[4]

चैतन्यमत की पञ्चम पुरूषार्थ की कल्पना का आधार श्रीमद्भागवत के ही वचन है। श्रीकृष्ण का स्वयं कथन है–

न किंचित साधवो धीरा भक्ता व्येकान्तिनो मम।

वांछन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम्।।[5]

अर्थात् भगवान् के सदाचार–सम्पन्न, धैर्यवान् तथा एकान्त निष्ठावाले भक्त उनके द्वारा दिये गये आत्यन्तिक मोक्ष की भी अभिलाषा नहीं करते।

श्रीकृष्ण ही अचिन्त्य शक्तिमान् भगवान परम तत्त्व हैं। वे अपने तीन विशिष्ट रूपों से विभिन्न लोकों में प्रकाशित होते हैं। इन रूपों के नाम हैं– (1) स्वयं रूप (2) तदेकात्मरूप (3) आवेश

भगवान् का 'स्वयं रूप' वह है जो दूसरे के ऊपर आश्रित न होकर अन्य की अपेक्षा न रखते हुए, स्वयं आविर्भूत होता है।[5] तदेकात्मरूप' का अर्थ है वह रूप जो स्वरूप से तो स्वयंरूप के साथ अभिन्न रहता है, परन्तु आकृति, अंग सन्निवेश तथा चरित से उससे भिन्न रहता है। तीसरा 'आवेश रूप' इन दोनों भेदों से सर्वथा भिन्न[6] होता है। वे महत्तम जीव आवेश कहे जाते हैं जिनमें ज्ञान शक्ति आदि की स्थिति से भगवान् आविष्ट प्रतीत होते हैं जैसे– वैकुण्ठ में शेष, नारद तथा सनकादि ऋषिगण।

भगवान् अचिन्त्याकार अनन्त शक्तियों से सम्पन्न हैं, परन्तु उनकी तीन मुख्य शक्तियाँ हैं–

(1) अंतरंगा शक्ति – चित्शक्ति स्वरूप शक्ति

(2) तटस्थ शक्ति – जीवशक्ति

(3) बहिरंग शक्ति – माया शक्ति

(1) अंतरंग शक्ति भगवद्रूपिणी होती है। सत्, चित् तथा आनन्द के कारण भगवान् की यह स्वरूपशक्ति एकात्मिका होने पर भी त्रिविधा होती है।

(क) संघिनी – इसके बल पर भगवान् स्वयं सत्ता धारा करते हैं, दूसरों को सत्ता प्रदान करते हैं और समस्त देशकाल तथा द्रव्यों में व्याप्त रहते हैं।[6]

(ख) संवित् शक्ति– भगवान् स्वयं चिदात्मा है। इसी शक्ति के कारण वह स्वयं को जानते हैं और दूसरे को ज्ञान प्रदान करते हैं।[7]

(ग) आह्लाादिनी शक्ति– भगवान् आनंदरूप हैं। वह शक्ति जिससे वे स्वयं आनन्द का अनुभव करते हैं तथा दूसरों को आनन्द प्रदान करते हैं, आह्लाादिनी शक्ति' कही जाती है।[8] इस विषय में वैदूर्यमणि का दृष्टान्त उपयुक्त है– जैसे एक ही वैद्रूर्यमणि नील, पीत आदि त्रिविधरूप धारण करता है, वैसे ही एकापरा शक्ति त्रिविध रूपों में विभक्त होकर तीन रूप धारण करती है।

तटस्थ शक्ति वह है जो परिच्छिन्न स्वभाव अणुत्त्वविशिष्ट जीवों के आविर्भाव का कारण बनती है।

मायाशक्ति का ही नाम है बहिरंग शक्ति। यही जगत के आविर्भाव का कारण बनती है। इन तीनों शक्तियों के समुच्चय की संज्ञा है– पराशक्ति।

चैतन्य में जगत नितरां सत्यभूत पदार्थ है, क्योंकि यह सत्यसंकल्प सर्वविद् हरि की बहिरंगशक्ति का विलास है। ईशावास्योपनिषद् के अनुसार भगवान् ने शाश्वतकाल तक यथार्थ भाव से अर्थों या पदार्थों का निर्माण किया।[9]

महाप्रभु चैतन्य मत के अनुसार भगवान् को अपने वश में करने का सर्वश्रेष्ठ साधन है– भक्ति। संवित् तथा आह्लाादिनी शक्तियों का सम्मिश्रण भक्ति का सार है। भक्ति के दो प्रकार हैं– विधि भक्ति तथा रागात्मिकता भक्ति। विधि भक्ति के उदय में शास्त्रों में निर्दिष्ट उपाय श्रेयस्कर होते हैं परन्तु रागात्मिका के उदय के लिए भक्त की आर्तता ही प्रधान कारण है।

गाौडीय वैष्णवों ने ही सर्वप्रथम भक्तिरस की अवतारणा तथा स्थापना साहित्य जगत् में की। भगवान् श्रीकृष्ण की गोलोकलीला पाँच भावों से सम्बन्ध रखती हैं– (1) शान्त (2) दास्य (3) सख्य (4) वात्सल्य (5) माधुर्य। यह क्रम उत्कर्ष बोधन करता है। रति की निम्न कोटि शान्त में रहती है और उसका चरम अवसान रहता है माधुर्य में। इस प्रकार चैतन्य मत में 'रस साधना' ही प्रधान साधना है।

इस प्रकार वज्रस्वामी नंद के पुत्र श्रीकृष्ण ही आराधनीय भगवान हैं। उनका धाम है– वृन्दावन। व्रज की गोपिकाओं के द्वारा की गयी रमणीय उपासना ही साधकों के लिए माननीय प्रामाणिक उपासना है। श्रीमद्भागवत निर्मल प्रमाणशास्त्र हैं। प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ पुरूषार्थ है– महाप्रभु चैतन्य के मत का यही सारांश है।

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या कादिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
शास्त्रं भागवतं प्रमाणममलं, प्रेमा पुमर्थो महान्
श्री चैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।[1]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लघुभागवतामृत 1/50
2. स्वरूपायभिन्नत्वेन – जीवगोस्वामी : भगवत्सन्दर्भ
3. भक्तिरसामृतसिन्धु 1/1/19
4. श्रीमद्भागवत
5. श्रीमद्भागवत
6. बलदेव विद्याभूषण – सिद्धान्तरत्न
7. सिद्धान्त रत्न
8. सिद्धान्त रत्न
9. कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू– ईशावास्योपनिषद्
10. भागवत सम्प्रदाय – बलदेव उपाध्याय

———